नैनीताल में उत्तरखंड के उच्च न्यायालय में

रिट याचिका (एम/एस) सं0 1218 वर्ष 2021

संतोष अग्रवाल..... याचिकाकर्ता

बनाम

अतिरिक्त आयुक्त, गढ़वाल मंडल, पौड़ी और अन्य

.....प्रतिवादी

श्री अरविंद वशिष्ठ, याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता

श्री एम0एस0 बिष्ट, ब्रीफ होल्डर, उत्तराखंड राज्य के लिए/प्रतिवादी सं0 1

श्री आई0पी0 कोहली, अधिवक्ता, प्रतिवादी सं0 2 के लिए।

माननीय शरद कुमार शर्मा, जे (ओरल)

जाहिरा तौर पर यह मुद्दा, जो याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाया गया है, प्रकृति में बहुत तुच्छ प्रतीत होता है, लेकिन कार्यवाही की परिस्थितियों और जिस स्तर पर यह इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है, उसके कारण मौजूदा रिट याचिका के आधार पर, यह एक बहुत ही प्रमुख मुद्दे से संबंधित है जिसे याचिकाकर्ता द्वारा भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत बनाए गए न्यायालयों की क्षमता से संबंधित एक अंतरिम आदेश देने के उद्देश्यों के लिए संबोधित करने की मांग की गई थी, विशेष रूप से एक कार्यवाही में जो भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत संशोधन के चरण में आयोजित की जा रही है।

2. याचिकाकर्ता विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने एक प्रश्न पर जोर दिया है कि जब भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत विचार की जाने वाली पूरी कार्यवाही, जो भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 34/35 के तहत सैद्धांतिक कार्यवाही से निकलती है, राजस्व रिकॉर्ड में अधिकारों की राजस्व प्रविष्टियों में परिवर्तन करने के उद्देश्य से, या भूमि पर अधिकारों के हस्तांतरण से संबंधित, उत्तराधिकार के आधार पर या हस्तांतरण के आधार पर, और जब अंतिम आदेश जो अधीनस्थ अदालतों द्वारा पारित किया गया था और बाद में जब, यह भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 210 के तहत अपील के चरण या भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत संशोधन तक पहुंच जाता है। याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलें यह हैं कि भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, पुनरीक्षण न्यायालय के पास संपत्ति की स्थिति से संबंधित कोई भी अंतरिम आदेश पारित करने के लिए पक्षकारों को उस संपत्ति के संबंध में जो 1901 के

अधिनियम की धारा 34/35 के तहत परिवर्तन के लिए कार्यवाही का विषय है, यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देने के माध्यम से, एक बहुत ही सीमित अधिकार क्षेत्र होगा, क्योंकि यह उस तारीख को मौजूद है, जब पुनरीक्षण पर पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विचार किया जा रहा है।

3. मौजूदा रिट याचिका निहित जिन संक्षिप्त तथ्यों पर विचार किया गया है, वे यह हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा अभिकथित विवादित संपत्ति के हित निहित पूर्ववर्ती स्वर्गीय श्रीमती. इंद्रावती हैं। यह तर्क दिया गया है कि स्वर्गीय श्रीमती. इंद्रावती ने ''खाता सं0 142, खसरा सं0 1584'' में सम्मिलित संपत्ति खरीदी थी, जिसका क्षेत्रफल 2.26 एकड़ था, जिसे कथित तौर पर याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्तियों द्वारा विक्रय विलेख पंजीकृत दि0 14.05.1987, खरीदा गया था, वह एक भूमि थी, जो गांव रायपुर, परगना परवाडून, जिला देहरादून में थी, और यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्तियों ने अपने पूर्ववर्तियों के मालिक श्री कुंवर चंद्र बहादुर से उपरोक्त संपत्ति (जिसे यहां विवादित संपत्ति कहा जाएगा) खरीदी थी।

4. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता का मामला है कि स्वर्गीय श्रीमती इंद्रावती ने बिक्री विलेख दिनांकित 14.05.1987 के आधार पर उपरोक्त संपत्ति खरीदने के बाद भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धाराओं के तहत सक्षम राजस्व प्राधिकरण के समक्ष एक आवेदन दायर किया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि उसका नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया जाए। इस प्रकार उक्त आवेदन जो स्वर्गीय श्रीमती इंद्रावती द्वारा दायर किया गया था, को 1987–88 के के सं0 283 के रूप में क्रमांकित किया गया था, और यह विवाद में नहीं है कि उक्त आवेदन जो स्वर्गीय श्रीमती इंद्रावती द्वारा दायर किया गया था, जिसे अपर तहसीलदार की अदालत ने अपने दिनांक 17.06.1988 के फैसले के माध्यम से स्वीकार किया गया था, और यह कि दिनांक 17.06.1988 के उक्त फैसले के पारित होने के बाद से, स्वर्गीय श्रीमती इंद्रावती द्वारा या उसके अधीन दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति, राजस्व न्यायालय नियमावली के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार राजस्व अभिलेखों में अपना नाम दर्ज कराने के लिए, कभी भी कोई प्रयास नहीं किया गया था। विशेष रूप से, राजस्व न्यायालय नियमावली के पैराग्राफ 39 के तहत प्रदान किया गया है, जो सक्षम राजस्व प्राधिकरण को राजस्व अभिलेखों में शीर्षक परिवर्तन, या उत्तराधिकार या हस्तांतरण द्वारा अधिकार प्रदान करने में किसी भी परिवर्तन को दर्ज करने के संबंध में प्रावधारन करता है। पैराग्राफ सं0 39, निम्नवत हैं:–

''39. लेखपाल, कागजात में परिवर्तन से संबंधित आदेश– (1) यदि किसी भी मामले में पारित डिक्री के प्रभाव या आदेश में लेखपाल के अभिलेखों में परिवर्तन शामिल है (एक के अलावा जिसमें खेवट में परिवर्तन शामिल है जिसके लिए राजस्व न्यायालय नियमावली के नियम 389 और 393 में प्रावधान मौजूद हैं), तो न्यायालय निर्धारित प्रपत्र (बी0आर0 सं0 250) में की जाने वाली प्रविष्टियों और निकाली जाने वाली प्रविष्टियों का पूरा विवरण देते हुए और तहसीलदार को लेखपाल के कागजात में नई प्रविष्टियां दर्ज करने का निर्देश देते हुए एक अलग आदेश तैयार करेगा। इस आदेश को तहसीलदारों को भेजा जाएगा, जो संबंधित न्यायालय में संलग्न छिद्रित कूपन की प्राप्ति की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर, परिवर्तन पंजीयक और उत्परिवर्तन रजिस्टर में आवश्यक परिवर्तनों को शामिल करने के प्रतीक के रूप में पंजीयक कानूनगो द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित और दिनांकित किए जाएंगे। पर्यवेक्षक कानूनगो की गार्ड–फाइल पर रखे जाने वाले उत्परिवर्तन आदेश को भेजने से पहले, पंजीयक कानूनगो लेखपाल के खतौनी और खेवात में आवश्यक परिवर्तनों को शामिल कराएगा।

(2) उप–नियम (1) के प्रावधान सभी अपील न्यायालयों पर भी लागू होंगे, जो अपील में पारित आदेश की एक प्रति निचली अदालत को प्रेषित करते समय, निर्धारित प्रपत्र में आदेश संलग्न करेंगे, जिसके लिए निष्पादन किया जाना है, बशर्ते कि जब अपील न्यायालय केवल निचली अदालत द्वारा पारित आदेश में

बदलाव किए बिना रद्द कर देता है, तो निचली अदालत के आदेश जिसे रद्द कर दिया गया है, की संख्या और तारीख देना पर्याप्त होगा। निर्धारित प्रपत्र में यह आदेश मूल न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा अभिलेखों में सुधार के संबंध में आवश्यक कार्रवाई के लिए तहसीलदार को भेजा जाएगा।

(3) इस आशय की प्रविष्टि कि विधिवत भरा गया प्रपत्र तहसीलदार या निचली अदालत को भेजा गया है, जैसा भी मामला हो, आदेश पत्र पर अहलमद या अदालत के अन्य अधिकारी द्वारा किया जाएगा और फाइल को अभिलेख कक्ष में तब तक नहीं भेजा जाएगा जब तक कि तहसीलदार द्वारा प्रपत्र का कूपन उपनियम (1) में निर्दिष्ट नोट के साथ वापस नहीं किया जाता है।''

5. मौजूदा रिट याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा रखे गए अभिलेखों से यह पता चलता है कि स्वर्गीय श्रीमती. इंद्रावती, अतिरिक्त तहसीलदार की अदालत द्वारा 17.06.1988 को निर्णय पारित करने के बाद, न तो उसका नाम कभी राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया, और न ही उसके द्वारा ऐसा कोई आवेदन तब तक दायर किया गया, जब तक कि 22.08.2020 को उनका निधन हुआ। याचिकाकर्ता ने (पूर्ण ''खतौनी'' को अभिलेख पर रखे बिना) तर्क दिया है कि अतिरिक्त तहसीलदार द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, पिछले 32 वर्षों में राजस्व रिकॉर्ड में कभी भी कोई प्रविष्टि नहीं की गई या नहीं की गई, और यह पहली बार था कि अतिरिक्त तहसीलदार, सदर, देहरादून द्वारा अपने दिनांकित 19.03.2020 के आदेश के अनुसार राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टि दर्ज करने का प्रयास किया गया था,, और इसकी प्रमाणित प्रति याचिकाकर्ता द्वारा पहली बार 25.08.2020 पर प्राप्त की गई है, जिसे इस रिट संलग्नक के अनुबंध सं0 2 के रूप में अभिलेख पर रखा गया है। इस समय यह उल्लेख करना अनुचित और आवश्यक नहीं होगा कि जिस तारीख को प्रविष्टि की गई थी और आदेश पारित किया गया था, उस तारीख को कहीं भी स्वर्गीय श्रीमती इंद्रावती का उल्लेख नहीं किया गया था कि इंद्रावती ने कभी भी अपने किसी भी उत्तराधिकारी को किसी भी हस्तांतरण विलेख या उपहार विलेख के आधार पर किसी भी अधिकार के साथ हस्तांतरित किया था, जिसका अर्थ है कि वह निर्वसीयत मृत्यु हो गई। प्रतिवादी अर्थात निजी प्रतिवादी नं. 2, अतिरिक्त तहसीलदार, सदर, देहरादून की अदालत द्वारा पारित दिनांक 19.03.2020 और 21.03.2020 के आदेशों के खिलाफ व्यथित होने के कारण, 1987–88 के वाद सं0 283 में पारित दिनांकित 17.06.1988 के फैसले को देर से लागू करने की मांग करते हुए, 2020–21 के राजस्व पुनरीक्षण सं0 27, ''अमरदेव खंडूरी बनाम. श्रीमती. इंद्रावती'', अपने अभिकथित बेटे संतोष अग्रवाल (मौजूदा याचिकाकर्ता) द्वारा योजित की गई।

6. इस स्तर पर, इस न्यायालय की राय है कि उक्त पुनरीक्षण ज्ञापन के अनुच्छेद 5 और 15 में उठाए गए अभिवचनों को उल्लेखित करना आवश्यक होगा, जो यहां उद्धत किया गया हैः–

''5. यह कि निरानीकर्ता का, एक वाद सहायक कलैक्टर, सदर, देहरादून के न्यायालय में अन्तर्गत धारा 229 बी जमी0वि0अधिनियम जो कि लंबे समय से लम्बित चला आ रहा हैं और उस पर माननीय न्यायालय द्वारा इस बात की निषेध ाज्ञा जारी की गई, कि निगरानीकर्ता की संपत्ति में किसी प्रकार का कब्जा दखलअंन्दाजी, हस्तक्षेप, खुर्दबुर्द, हस्तांतरण एवं संपत्ति की प्रकृति को नही बदला जाएगा और न ही जबरन कोई कब्जा किया जाएगा। यह आदेश खतौनी में ंअकित व दर्ज है और आदेश की तिथि से आज तक अंकित व दर्ज चला आ रहा है।

15. यह कि निगरानीकर्ता का एक वाद मानीनय सहायक कलैक्टर – सदर, देहरादून में अन्तर्गत धारा 229 बी जामी0वि0अधि0 के अधिन लम्बित है और जिसमें कि माननीय न्यायालय द्वारा इस बात की निषेधाज्ञा जारी की गई कि

प्रश्नगत संपत्ति पर एवं निगरानीकर्ता की संपत्ति पर किसी प्रकार का कब्जा, दखलअंदाजी, खुर्दबुर्द, हस्तांतरण और संपत्ति की प्रकृति को नहीं बदला जाएगा और न ही किसी प्रकार का हस्तक्षेप किया जाएगा, जो कि राजस्व अभिलेखों की खतौनी में भी आदेश अंकित व दर्ज है।''

7. अभिलेखों और अभिवचनों से पता चलता है कि भूमि राजस्व अधिनियम 1901 की धारा 219 के तहत अतिरिक्त आयुक्त की अदालत के समक्ष पुनरीक्षण याजित होने से पहले, उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (संक्षेप में ''यूपीजेडए और एलआर अधिनियम'') की धारा 229बी के तहत विवादग्रस्त भूमि के संबंध में अधिकारों की घोषणा के लिए और निगरानी में उठाए गए अभिवचनों के अनुसार पूर्व लंबित होना कार्यवाही की गई थी, जिसे ऊपर उद्धत किया गया है (पैरा सं0 5 व 15)। ऐसा प्रतीत होता है कि सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी की अदालत, जिसके समक्ष अधिकारों की घोषणा के लिए यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229बी के तहत प्रमुख कार्यवाही दायर की गई थी, ने यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229डी के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग किया था, और अंतरिम व्यादेश पारित किया गया था, जिसके तहत उसी सम्बंधित संपत्ति के लिए यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229बी के तहत कार्यवाही करने वाले पक्षों को सम्बंधित संपत्ति पर गलत हस्तक्षेप के किसी भी कार्य से खुद को निषिद्ध किये जाने का निर्देश दिया गया था, उन्हें आगे सम्बंधित संपत्ति की प्रकृति को नहीं बदलने का निर्देश दिया गया था, और आगे एक निर्देश भी जारी किया गया था कि धारा 229 के तहत कार्यवाही के लिए विरोधी पक्षकार संपत्ति का आगे अंतरण कर तृतीय पक्ष में कोई अधिकार सृजित नही किया गया है।

8. मौजूदा निगरानी में निगरानीकर्ता द्वारा कथन किया गया था कि यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229डी के तहत सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी की अदालत द्वारा निषेधाज्ञा के अंतरिम आदेश को मंजूरी देने के बाद, घोषणा के लिए यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229बी के तहत कार्यवाही के साथ, इसकी प्रविष्टियां राजस्व रिकॉर्ड में की गई थीं और वास्तव में निगरानीकर्ता/उत्तरदाता द्वारा दि0 19.03.2020 व 21.03.3030 के आदेशों को चुनौती देते हुए, पुनरीक्षण अदालत को बताया गया कि भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत पुनरीक्षण कार्यवाही की संस्थापन से पहले, चूंकि अंतरिम व्यादेश आदेश दिया गया था, जिसे यूपीजेडए की धारा 229डी के तहत दिया गया था; सामान्य प्रक्रिया में याचिकाकर्ता द्यद्वारा कोई विक्रय नही किया जा सकता था क्योंकि न्यायालय द्वारा निषेध किया गया था।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि स्वर्गीय श्रीमती इंद्रावती की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों में एक आदेश के आधार पर परिवर्तित किया गया था, जिसे उप नायब तहसीलदार द्वारा 08.10.2020 पर पारित किया गया था। वास्तव में, यह आदेश भी ''खतौनी'' का पूर्ण उद्धरण नहीं है, क्योंकि जो प्रविष्टि 08.10.2020 पर राजस्व अभिलेखों में की गई थी, वह फॉर्म 6 भाग 2, क्र0सं0 1558, दिनांक 24.09.2020 के आधार पर थी, जिसके आधार पर, राजस्व प्रविष्टियां कथित रूप से मौजूदा याचिकाकर्ता के नाम पर की गई थीं। इन राजस्व प्रविष्टियों ने बल्कि दोहराया कि यह उन अंतरिम निषेधाज्ञाों के विपरीत होगा जो यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229बी के तहत अधिकारों की घोषणा के लिए नियमित कार्यवाही में सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी की सक्षम राजस्व अदालत द्वारा पारित किए गए थे, जो पहले ही विवाद में संपत्ति की बिक्री को रोकने के लिए निषेधाज्ञा का आदेश पारित कर चुके हैं।

10. यह याचिकाकर्ता का एक स्वीकृत मामला है कि उप नायब तहसीलदारों के आदेश दि0 08.10.2020 द्वारा, दि0 17.06.1988 के आदेश के 32 वर्षों के बाद, राजस्व रिकॉर्ड में उनका नाम दर्ज किए जाने के बाद, यू. पी. जेड. ए. और एल. आर. अधिनियम की धारा 229बी के तहत याचिकाकर्ता अधिकारों की घोषणात्मक वाद में यू. पी. जेड. ए. और एल. आर. अधिनियम की धारा 229डी के तहत पारित निषेधाज्ञा आदेश के निर्वाह के दौरान उन्होंने संपत्ति के हिस्से के दो बिक्री विलेखों को निष्पादित किया था, अर्थात 04.12.2020 को मु0 46,11,000/—रू0 के प्रतिफल हेतु एक श्री अमजद अली के पक्ष में तथा एक श्री नरेश कुमार गैरा की पत्नी पूनम गैरा के पक्ष में।

11. याचिकाकर्ता एक मामला लेकर आया है, कि उपरोक्त खरीद के बाद, संबंधित बिक्री विलेखों के निष्पादन के बाद, ऊपर वर्णित खरीदारों ने उप नायब तहसीलदार के समक्ष दाखिल खारिज के लिए एक आवेदन दायर किया था, जो क्रमशः मामला सं0 924 और 925 था, और इसे 05.03.2021 पर योजित किया गया था, और इसे उप नायब तहसीलदार के आदेश दि0 08.03.2021 द्वारा स्वीकार किया गया था, और याचिकाकर्ता के स्थान पर खरीदार का नाम, राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था।

12. मौजूदा रिट याचिका में याचिकाकर्ता की प्रास्थगन इस प्रभाव से और संभावित रूप से है कि भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत राजस्व निगरानी के संस्थापन पर, अतिरिक्त आयुक्त की विद्वत अदालत अर्थात प्रतिवादी सं0 1 ने, इसमें, दि0 17.03.2021 को आक्षेपित आदेश पारित किया था, जिसके तहत इसके अलावा दिनांक 19.03.2020 और 21.03.2020 (जो 17.06. 1988 के आदेश के पारित होने के 32 वर्षों के बाद दर्ज किया गया था) के आक्षेपित आदेशों के प्रभाव और संचालन को अतिरिक्त आयुक्त के पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा स्थगन में रखा गया था, और आगे पक्षकारों को विवादित संपत्ति के लिए यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था।

13. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के मुख्य तर्क यह थे कि चूंकि पुनरीक्षण न्यायालय भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए; इसकी शक्तियां केवल सीमित और सीमित हैं और राजस्व रिकॉर्ड में नाम दर्ज करने के संबंध में सीमित हैं, इसलिए इसे एक अतिरिक्त अंतरिम आदेश पारित करते हुए पक्षों को सम्बंधित संपत्ति के संबंध में ''यथास्थिति'' बनाए रखने का निर्देश देते हुए अपने अधिकार क्षेत्र को पार नहीं करना चाहिए था; यह पक्षों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देने के आदेश का यह हिस्सा है जिसे याचिकाकर्ता द्वारा मौजूदा रिट याचिका में आंशिक रूप से चुनौती दी गई है, जबकि निम्नलिखित प्रभाव से अपनी राहत को संशोधित किया गया है:—

''इसलिए यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय कृपापूर्वक आदेश पारित करें कि—

(1) निगरानी सं0 27/2020—21 श्री अमरदेव खंडूरी बनाम श्रीमती. इंद्रावती में प्रतिवादी सं. 1 द्वारा पारित आदेश दिनांकित 17.03.2021 के आक्षेपित भाग को रद्द करते हुए सरशियोरेराई की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। जिसके तहत 19.03.2020 और 21.03.2020 दिनांकित आदेश के संचालन और प्रभाव पर रोक लगा दी गई है और विवादित संपत्ति पर यथास्थिति भरण—पोषण का निर्देश दिया गया है।

(2) कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायाधीशालय मामले की परिस्थितियों के साथ—साथ न्यायहित में भी उचित समझे।

(3) खर्च के साथ रिट याचिका को अनुमति दें।''

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत पुनरीक्षण न्यायालय की क्षमता और अधिकार क्षेत्र के बारे में उनका तर्क, एक यथास्थिति बनाए रखने के लिए पक्षों को निर्देश देने का आदेश पारित करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से जब भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के प्रावधानों के तहत राजस्व अदालतों के पास निहित अधिकार क्षेत्र, उत्तराधिकार के आधार पर या हस्तांतरण द्वारा, केवल वित्तीय प्रविष्टियों के उद्देश्यों के लिए, भूमि के लिए देय भूमि राजस्व के प्रेषण के उद्देश्यों के लिए, अधिकारों या स्वामित्व के हस्तांतरण द्वारा नाम की रिकॉर्डिंग से संबंधित है, और वे प्रविष्टियां स्वयं उस व्यक्ति के स्वामित्व या अधिकार को निर्धारण के लिए नहीं होंगी जिसके नाम पर भूमि दर्ज की गई है।

15. उस स्थिति में, वह अभ्यावेदन करता है कि जब अधिनियम के तहत, यह विशेष रूप से राजस्व प्रविष्टियां हैं, जिन्हें किए जाने का निर्देश दिया गया है, तो पुनरीक्षण न्यायालय को पक्षों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देने का आदेश पारित नहीं करना चाहिए था, जो भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के उद्देश्य के विपरीत है। इसके संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने एस. सी. सी. ऑनलाइन केस फाइंडर 2020 में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया था, यह फैसला **आयकर अधिकारी, कन्नौर बनाम एम0के0 मोहम्मद कुन्ही** में दिया गया था। एक आयकर मामले के संदर्भ में ।विशेष रूप से, उन्होंने उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ सं0 9 का संदर्भ दिया था, जो बल्कि इस मुद्दे पर विचार कर रहा था कि क्या आयकर अपीलीय अधिकरण, चूंकि यह एक अदालत नहीं है, लेकिन यह अपनी न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है, इसलिए अंतरिम आदेश पारित करने के व्यापक आयाम का उपयोग आयकर अपीलीय अधिकरण द्वारा नहीं किया जा सकता है, ताकि आयकर अधिनियम के तहत अपीलीय अधिकरण के समक्ष अपील विचाराधीनता रहने के दौरान आयकर के अवशिष्ट की वसूली पर रोक लगाई जा सके। यह प्रश्न, जिस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जा रहा था, उस मामले में यह केरल उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से उत्पन्न हो रहा था और मुद्दा यह था कि क्या आयकर अपीलीय अधिकरण के पास आयकर अधिनियम, 1961 के प्रावधानों के तहत विभागीय अधिकारियों द्वारा लगाए गए 'जुर्माने की वसूली' पर रोक लगाने की शक्ति थी। प्रासंगिक पैराग्राफ सं0 9, 10,12 और 13 यहाँ उद्धत किये गए हैं:–

''9. यह सर्वविदित है कि आयकर अपीलीय अधिकरण एक अदालत नहीं है, बल्कि यह न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है। अपीलों से निपटने में न्यायाधिकरण की शक्तियां सबसे व्यापक हैं और कुछ मामलों में सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत अपील न्यायालय की शक्तियों के समान मानी गई हैं।

सैद्धांतिक रूप से मुझे ऐसा लगता है कि न्यायालय को वह अधिकार क्षेत्र प्राप्त होना चाहिए, क्योंकि जो सिद्धांत उचित रूप से लंबित होना मुकदमेबाजी के संरक्षण के लिए सभी आदेशों को रेखांकित करता है, वह यह है कि सफल पक्ष को उस मुकदमेबाजी का फल प्राप्त करना है, न कि केवल एक निष्फल सफलता प्राप्त करना है। यह सिद्धांत, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, पहले मुकदमे से पहले प्रथम दृष्टांत के न्यायालय और दूसरे मुकदमे से पहले अपील न्यायालय पर उतना ही लागू होता है जितना कि अंतिम अपील की सुनवाई से पहले अंतिम दृष्टांत के न्यायालय पर लागू होता है।

10. हालाँकि, कुछ ऐसे निर्णय हैं जिनमें कठिनाई महसूस की गई थी कि अपीलीय अधिकरण के पास अपील विचाराधीनता रहने के दौरान वसूली पर रोक लगाने की शक्ति नहीं थी। **वाचा श्रीममूर्ति बनाम आयकर अधिकारी विजयनगरम** व अन्य में, निर्धारिती को एक रिट याचिका दायर करनी पड़ी क्योंकि अधिकरण के समक्ष

अपील विचाराधीनता रहने के दौरान निर्धारित कर की वसूली पर रोक नहीं लगाई गई थी। उस मामले में विवाद मुख्य रूप से भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 45 द्वारा आयकर अधिकारी को प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति के दायरे पर केंद्रित था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि आयकर अधिकारी को धारा 45 के तहत अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने या ईमानदारी और निष्पक्ष रूप से इसका प्रयोग करने के लिए मजबूर करने के लिए एक रिट याचिका को वर्जित नहीं किया गया था। लेकिन गुण–दोष के आधार पर अदालत ने रिट जारी करने से इनकार कर दिया। विश्वनाथ शास्त्री, जे. ने अपने अलग फैसले में निम्नलिखित कहाः

अंत में यह देखा जाना चाहिए कि आयकर अधिनियम की धारा 45 अपनी शर्तों में कुछ हद तक गुप्त है और केवल आयकर अधिकारी को अपील लंबित रहने तक किसी व्यक्ति को वसूली सं मुक्त घोषित करने की शक्ति देती है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI, नियम 5 और 6 के समान व्यादेश का कोई प्रावधान नहीं है। कर की वसूली पर रोक लगाने की कोई स्पष्ट शक्ति प्रदान नहीं की गई है, हालांकि अधिनियम की धारा 45 के तहत निर्धारिती के पक्ष में एक आदेश का प्रभाव रोक है। न ही किश्त में कर का भुगतान करने की अनुमति देने या विलंबित भुगतान के लिए सुरक्षा लेने का कोई प्रावधान है। न तो अपीलीय सहायक आयुक्त और न ही अपीलीय अधिकरण को कर संग्रह पर रोक लगाने की शक्ति दी गई है। क्या कानून को और अधिक उदार नहीं बनाया जाना चाहिए ताकि अपील को प्राथमिकता देने वाले निर्धारिती को उपयुक्त सुरक्षा प्रदान करने पर कर संग्रह पर पूर्ण या आंशिक रूप से रोक, अपीलीय मंच से प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके, यह विधायिका के लिए विचार करने का विषय है।

12. उच्च न्यायालय ने, मौजूदा मामले में, हैल्सबरी के लॉज ऑफ इंग्लैंड, तीसरे संस्करण, भाग 20 पी।705 से एक प्रस्तर का उल्लेख किया, जहाँ यह कहा गया है कि ''कोई भी कर देय नहीं है जबकि निर्धारण एक अपील का विषय है, सिवाय कर के ऐसे हिस्से के जो अभिनिर्धारित किया गया है जो आयुक्तों को प्रतीत होता है कि अपील विवाद में नहीं है।''यह कथन स्पष्ट रूप से अंग्रेजी कानूनों के प्रावधानों पर आधारित है और इससे कोई सहायता प्राप्त करना संभव नहीं है।

13. अधिनियम की धारा 255 (5) अधिकार प्रदान करती है कि अपीलीय अधिकरण अपनी स्वयं की प्रक्रिया को विनियमित करेगा, लेकिन यह बहुत संदिग्ध है कि क्या उस प्रावधान से स्थगन की शक्ति को स्पष्ट किया जा सकता है। हमारी राय में अपीलीय अधिकरण को अपने अपीलीय अधिकार क्षेत्र के आकस्मिक या सहायक के रूप में स्थगन देने की शक्ति होनी चाहिए। यह विशेष रूप से तब होता है जब धारा 220 (6) किसी ऐसी स्थिति से स्पष्ट रूप से संबंधित होती है जब कोई अपील अपीलीय सहायक आयुक्त के समक्ष लंबित होना होती है, लेकिन जब कोई अपील अपीलीय अधिकरण के समक्ष लंबित होना होती है तो अधिनियम उस संबंध में चुप रहता है। यह कहा जा सकता है कि जब धारा 254 अपीलीय अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है, तो यह निहित रूप से ऐसे सभी कार्यों को करने या ऐसे साधनों को नियोजित करने की शक्ति प्रदान करती है, जो इसके निष्पादन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं और यह कि वैधानिक शक्ति उचित मामलों में कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए ऐसे आदेश देने का कर्तव्य वहन करती है जो अपील को सफल होने पर निरर्थक होने से रोकेगी।''

16. वास्तव में रेखांकित प्रमुख पूर्वस्थिति, जिस पर उपरोक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा विचार किया जा रहा था, आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 255 (5) के तहत अधिनियम के तहत बनाए गए आयकर अपीलीय अधिकरण द्वारा शक्तियों के प्रयोग के आलोक में और उसके संदर्भ में था, जो

इस बात पर विचार करता है कि आयकर अपीलीय अधिकरण को अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने की शक्ति मिली है और उन मामलों में जहां अपीलीय अधिकरण ने माना था कि आयकर के जुर्माने की वसूली पर रोक लगाने की शक्ति, अधिनियम की धारा 255 (5) के तहत उसके पास निहित शक्तियों या अपीलीय अधिकार क्षेत्र के अपने प्रयोग में सहायक शक्तियों के लिए आकस्मिक प्र कृति की थी। कर कानून के उक्त सिद्धांत राज्य के राजस्व कानूनों पर लागू नहीं होंगे, जो पूरी तरह से विभिन्न विषयों और क्षेत्राधिकारों पर हैं, जिन्हें भारत के संविधान की अनुसूची VII के अनुसार इसके अनुप्रयोग में विभाजित किया गया है।

17. दूसरा प्राधिकरण, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा निर्भरता रखी गई है, वह **आयकर आयुक्त, दिल्ली बनाम बंसी धर एंड संस 1986 (1) एस. सी. सी. पृष्ठ 523** में बताए गए निर्णय के लिए है, जिसका निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1974 की एक अन्य सिविल अपील 77 और 78 के साथ किया गया था।याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ सं0 39, 40 और 42 का संदर्भ दिया था, जो नीचे दिए गए हैंः–

''39. एक उपयुक्त मामले में, यदि निर्धारिती को लगता है कि संदर्भ के लंबित होते हुए वसूली की रोक आवश्यक है या न्यायहित में है, तो निर्धारिती उच्च न्यायालय द्वारा संदर्भ के निस्तारण तक या जब तक अपीलीय प्राधिकरण उचित समझे, तब तक रोक देने के लिए अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष आवेदन करने का हकदार है। लेकिन यदि अपीलीय प्राधिकरण ने अधिकार क्षेत्र के बिना या अधिक अधिकार क्षेत्र में या अधिकार क्षेत्र के अनुचित प्रयोग में कार्य किया, तो ऐसे अपीलीय प्राधिकरण के निर्णय को उच्च न्यायालयों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उचित रिट जारी करके सही किया जा सकता है।

40. यह ध्यान में रखना होगा कि 1922 के अधिनियम की धारा 66 या 1961 के अधिनियम की धारा 256 के तहत प्रश्नों का उत्तर देने या संदर्भों का निपटान करने में, उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता या चार्टर या संबंधित उच्च न्यायालयों की स्थापना करने वाले अधिनियमों द्वारा उन्हें प्रदत्त किसी भी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करते हैं। उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली कुछ मामलों की अधिकार क्षेत्र के संबंध में, 1922 के अधिनियम की धारा 66 या 1961 के अधिनियम की धारा 256 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में निहित शक्तियों या आकस्मिक शक्तियों की अवधारणा से अलग रखा जाना चाहिए। 1922 के आयकर अधिनियम की धारा 66 या 1961 के आयकर अधिनियम की धारा 256 सीमित प्रकृति की एक विशेष अधिकार क्षेत्र है जो सिविल प्रक्रिया संहिता या चार्टर या ऐसे उच्च न्यायालयों का गठन करने वाले विशेष अधिनियमों द्वारा नहीं बल्कि आयकर अधिनियम, 1922 या 1961 के विशेष प्रावधानों द्वारा कानून के प्रश्नों पर उच्च न्यायालय की राय प्राप्त करने के सीमित उद्देश्य से प्रदान की गई है। उस राय को ठीक से देने में यदि आकस्मिक या सहायक शक्ति का कोई प्रश्न उत्पन्न होता है जैसे कि अवसर देना या सुनवाई के बिना खारिज किए गए संदर्भ को बहाल करना या कागजी पुस्तक दाखिल करने के लिए कुछ अतिरिक्त समय देना, तो ऐसी शक्तियां उसे प्रदत्त अधिकार क्षेत्र में आती हैं। लेकिन ऐसी आनुषंगिक शक्तियों का इस तरह से अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि वे किसी अपीलीय प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र में आने वाले संदर्भ के लंबित रहने तक करों की वसूली पर रोक लगाने की शक्ति प्रदान करें। इसलिए, एक संदर्भ में *ex debito justitiae* में रोक देने की अवधारणा उत्पन्न नहीं होती है। यह अवधारणा उस स्थिति में उत्पन्न हो सकती है जब अपीलीय प्राधिकरण अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए रोक लगाने की अनुमति देता है जहां स्पष्ट प्रावधान नहीं है। *ex debito justitiae* पक्षकारों के बीच न्याय करना है।

42. इसलिए, हमारी राय में यह नहीं कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय के पास प्राप्ति पर रोक लगाने या निषेधाज्ञा देने के लिए उसके समक्ष लंबित होना संदर्भ के मामले में निहित शक्ति या आकस्मिक शक्ति है। यह अपीलीय प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र के भीतर रहना चाहिए और एक संदर्भ की विचाराधीनता अपीलीय प्राधिकरण के उस अधिकार क्षेत्र से अलग नहीं होती है। इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने एक ंलबित संदर्भ में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के तहत वसूली पर रोक लगाने का आदेश पारित करके अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में गलती की थी। उच्च न्यायालय अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता था यदि अपीलीय प्राधिकरण ने अपने अधिकार क्षेत्र का उचित रूप से प्रयोग नहीं किया होता, न कि संदर्भ अधिकार क्षेत्र में, बल्कि उचित मामलों में अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के आधार पर। लेकिन यहां ऐसा नहीं था।''

18. मैं उक्त तर्क की गंभीरता से आत्यन्तिक असहमति रखता हूं, जिसे याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के आलोक में, उन मामलों में प्रस्तुत किया गया था, जहां अपील न्यायालय आयकर अधिनियम, 1961 के तहत देय दंड की वसूली से अंतरिम संरक्षण देने की अपनी निहित शक्तियों का प्रयोग कर रहा था, और रिट अधिकार क्षेत्र के अपने सहसंबद्ध आह्वान, जैसा कि उक्त निर्णय के पैराग्राफ 39 में संदर्भित है, में प्रयोग कर रहा था।

19. दूसरे फैसले में, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, 1986 (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष निर्धारण के लिए जो प्रश्न उठा था, वह यह था कि क्या आयकर की कार्यवाही के तहत एक संदर्भ न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में ''सी. पी. सी''.) की धारा 151 के तहत आयकर आयुक्त (1) और आयकर अधिकारी को उस मांग को लागू करने से रोकने के लिए निषेधाज्ञा का आदेश देने के लिए शक्तियों का प्रयोग कर सकता था, जो उठाई गई थी और कर के अवशिष्ट को प्राप्त करने के लिए, जो तब भी आयकर अधिनियम, 1961 के तहत एक संदर्भ कार्यवाही में लंबित होना था, और क्या सी. पी. सी. की धारा 151 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए आयकर अपीलीय अधिकरण द्वारा एक अंतरिम आदेश दिया जा सकता था।

20. जवाब देने ठीक होना, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दंड की वसूली, या आयकर अवशिष्ट की वसूली और आयकर अपीलीय अधिकरण द्वारा इसकी वसूली पर रोक लगाने के बहाने जिन सिद्धांतों पर बहस की गई थी, वे पूरी तरह से एक अलग सवाल था, जिस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त दो निर्णयों में विचार किया जा रहा था। यह इस अर्थ में स्पष्ट था कि इस न्यायालय की राय के अनुसार, आयकर अधिनियम, 1961 के तहत अनुध्यात वसूली या प्रक्रिया, जो भारत के संविधान की अनुसूची 7 की सूची 1 की प्रविष्टि 82 में निहित केंद्रीय विधान का एक हिस्सा है। आयकर अपीलीय अधिकरण द्वारा अंतरिम आदेश देने से संबंधित कथित सिद्धांतों या अनुपात को, केंद्रीय विधान होने के प्रभाव के आधार पर, इसकी व्याख्या के लिए, और भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के दायरे में आने वाली राजस्व भूमि के लिए उपार्जित राजस्व के अनुरूप, एक सामान्य आधार पर नहीं रखा जा सकता है, और इस तर्क का औचित्य यह है कि भूमि राजस्व भारत के संविधान की अनुसूची 7 की सूची 2 प्रविष्टि 18 में निहित है। इसका अर्थ यह है कि यह एक राज्य का विषय है, इसे कर कानूनों के लिए इसके अनुप्रयोग में समान रूप से नहीं माना जा सकता है, जिसे किसी विशेष वित्तीय वर्ष में उसे उपार्जित आय के लिए निर्धारिती से धन की अनिवार्य निकासी के रूप में निर्धारित किया गया है और जो अपने मूल्यांकन पर और इसकी वसूली के परिणामस्वरूप भारत सरकार के खजाने में आएगा; क्योंकि यह भारत के संविधान की सूची 1 के तहत एक विषय

के रूप में निहित है, और उक्त विषयों के संबंध में, विशेष रूप से कृषि भूमि और भारत के संविधान की अनुसूची 7 की प्रविष्टि 18 में निहित भूमि से उपार्जित कृषि राजस्व के संबंध में कोई समानता नहीं मानी जा सकती है। इसके अलावा, उक्त मामले में जिस वसूली को स्थगित रखने की मांग की गई थी, वह सी. पी. सी. की धारा 151 के तहत निहित प्रावधानों को लागू करके थी, जिस पर आयकर प्रास्थगन की अपीलीय अधिकार क्षेत्र द्वारा शक्तियों के प्रयोग के संदर्भ में विचार किया जाना था, उस प्रक्रिया के आलोक में जिस पर आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 255 के तहत विचार किया गया है। जबकि इसके विपरीत, भूमि राजस्व कानूनों के तहत, इसकी प्रक्रिया भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के अध्याय 9 द्वारा शासित होती है, जो आयकर अधिनियम के तहत विचार की गई प्रक्रिया में आत्यन्तिक रूप अलग है।

21. अतः, उपरोक्त दो निर्णय याचिकाकर्ता के लिए कोई लाभप्रद नहीं हैं।यदि भूमि राजस्व अधिनियम के अध्याय 9 के प्रावधानों को ध्यान में रखा जाता है, जो राजस्व अदालतों और राजस्व अधिकारियों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित हैं, तो सी. पी. सी. के प्रावधान किए गए हैं, भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत विशेष रूप से प्रदान की गई प्रक्रियाओं के लिए इसकी सीमित प्रयोज्यता और इस प्रकार, अंतरिम संरक्षण देने के सिद्धांत, भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 208 और 209 के तहत प्रदान की गई प्रक्रिया द्वारा शासित होंगे, जो निम्नानुसार हैः–

208–जुर्माने और लागत की वसूली।– पक्ष और पक्ष के बीच लागत के अलावा सभी शुल्क, जुर्माना, लागत और इस अधिनियम के तहत भुगतान करने का आदेश दिए गए अन्य धन की वसूली इस तरह की जाएगी जैसे कि वे राजस्व का बकाया हो।

राजस्व न्यायालय को, इस अधिनियम के किसी विशेष प्रावधान के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के बशर्ते देय लागत को उसके समक्ष किसी भी कार्यवाही में इस तरह से देने और विभाजित करने की शक्ति होगी जो वह उचित समझेः

बशर्ते कि जब इस धारा के तहत भूमि को सरकार को देय धन के लिए नहीं बेचा जाता है, तो धारा 161 के प्रावधान ऐसी बिक्री पर लागू नहीं होंगे।

209. अचल संपत्ति के कब्जे का प्रदान किया जाना– जब कोई आदेश दिया जाता है कि किसी व्यक्ति को किसी अचल संपत्ति के कब्जे में रखा जाए, तो आदेश देने वाला अधिकारी उसी तरीके से और सभी अवमाननाओं, प्रतिरोध और इसी तरह के संबंध में उसी शक्तियों के साथ कब्जा सौंप सकता है, जो दीवानी न्यायालयों द्वारा अपने स्वयं के डिक्री के निष्पादन में कानूनी रूप से प्रयोग किया जा सकता है।

22. यद्यपि 1901 के भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 209 के तहत सिद्धांत इस पहलू से संबंधित हैं कि जहां किसी व्यक्ति को अचल संपत्ति के कब्जे निहित रखा गया है, और जहां कब्जे की डिलीवरी का मुद्दा सम्बंधित है, राजस्व अदालतें अपने आदेशों के निष्पादन निहित दीवानी अदालतों की शक्तियों का प्रयोग करेंगी।

23. मौजूदा मामले में, याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश विचाराधीनता के खिलाफ रिट याचिका याजित की गई, जिसमें पक्षों को ''यथास्थिति'' बनाए रखने का निर्देश दिया गया था, इस न्यायालय का विचार है कि **ए. आई. आर. 1991 (इलाहाबाद पूर्ण पीठ), 114 ''गंगा सरन बनाम सिविल न्यायाधीश, हापुड़, गाजियाबाद और अन्य''** में रिपोर्ट किए गए निर्धारण के आलोक में, ,

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने निहित या पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए कोई भी रिट याचिका, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ अदालतों द्वारा पारित अंतरिम सुरक्षा या अंतर्वर्ती आदेशों विचाराधीनता के खिलाफ अनुरक्षणीय नहीं होगी, क्योंकि अंतरिम आदेश, जिसे बनाए रखने का निर्देश दिया गया था, यह केवल एक व्यवस्था है, जो दोनों के बीच की गई है।–

''11. हमारे द्वारा सिद्ध दिए जाने वाले दूसरे प्रश्न के संबंध में, हम इसे यहाँ विस्तार से प्रस्तुत करने के लिए इच्छुक नहीं हैं। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि कमरुद्दीन के मामले (सुप्रा) में उच्चतम न्यायालय का दृष्टिकोण कि आम तौर पर दीवानी मुकदमा में पारित एक अंतर्वर्ती आदेश अनुच्छेद के तहत उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी नहीं है। संविधान की धारा 226, निस्संदेह रिट को अस्वीकार करने में न्यायालय द्वारा विचार में लिए गए मान्यता प्राप्त सिद्धांत पर आधारित है। हमारी राय में, कमरुद्दीन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित है कि धारा 115 सीपीसी के अंतर्गत उच्च न्यायालय में मामला अनुरक्षणीय है और व्यथित पक्ष उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का आह्वान कर सकता है। लेकिन ऐसी स्थिति में जहां जिला न्यायालयों द्वारा पारित अपीलीय या पुनरीक्षण आदेश के खिलाफ एक संशोधन वर्जित है और उक्त आदेश कानून की प्रत्यक्ष त्रुटि से ग्रस्त है और आगे व्यथित पक्ष के लिए स्पष्ट अन्याय का कारण बनता है, क्या यह कहा जा सकता है कि ऐसा आदेश अनुच्छेद के बशर्ते उच्च न्यायालय के असाधारण न्यायशास्त्र के लिए उत्तरदायी नहीं है। संविधान की धारा 226, हमारी राय में, हालांकि सिविल मुकदमा में पारित प्रत्येक अंतर्वर्ती आदेश अनुच्छेद के बशर्ते समीक्षा के अधीन नहीं है। संविधान की धारा 226 लेकिन यदि आदेश से यह पाया जाता है कि कानून के मौलिक सिद्धांत का उल्लंघन आक्षेपित है और आगे इस तरह के आदेश से व्यथित पक्ष के साथ पर्याप्त अन्याय होता है, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कमरुद्दीन के मामले (ऊपर) में लिया गया दृष्टिकोण उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद के अंतर्गत जारी किए जाने वाले ऐसे रिट को वर्जित नहीं करेगा। लेकिन केवल संविधान की अनुच्छेद 226 या 227 के तहत ऐसी रिट याचिका अनुरक्षणीय होगी जहां रिट उच्चतम न्यायालय के साथ–साथ उस संबंध में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित सुस्थापित और मान्यता प्राप्त सिद्धांतों के दायरे में जारी की जा सकती है। कमरुद्दीन के मामले (ऊपर) में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस हद तक राय व्यक्त की गई कि किसी निजी व्यक्ति को परमादेश की रिट तब तक जारी नहीं की जा सकती जब तक कि वह किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए वैधानिक कर्तव्य के तहत न हो, यह सरशियोरेराई और मेनडेमस आदेश के संबंध में सुस्थापित सिद्धांतों के अनुरूप है और हमें इसे दोहराने या विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में एक मामले में प्रतिवादी के वकील उपस्थित हुए, लेकिन उक्त वकील ने यह कहकर खुद को संतुष्ट किया कि यदि अनुच्छेद के तहत किसी निजी व्यक्ति परमादेश आदेश जारी नहीं की जा सकती है तो आक्षेपित आदेश को रद्द करने के बाद मामले को निचली अदालत में वापस भेजा जा सकता है। यह दलील सही नहीं है। जहाँ कोई व्यथित पक्ष संविधान की अनुच्छेद 226 या 227 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है। संविधान की धारा 226 किसी ऐसे निजी व्यक्ति को निषेधाज्ञा जारी करने से इनकार करने वाले दीवानी मुकदमे में पारित निषेधाज्ञा के खिलाफ, जो सार्वजनिक कर्तव्य का मुकदमा करने के लिए वैधानिक कर्तव्य के तहत नहीं है या निषेधाज्ञा के निषेधाज्ञा को खाली कर रहा है, मुख्य अनुतोष किसी निजी व्यक्ति परमादेश आदेश जारी करने और अनुच्छेद के तहत ऐसी रिट याचिका के लिए है। संविधान की अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका अनुरक्षणीय नहीं होगी। कमरुद्दीन के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद यह न्यायालय किसी निजी पक्ष परमादेश आदेश जारी नहीं कर सकता है जब तक कि वह सार्वजनिक कर्तव्य का पालन करने के लिए वैधानिक कर्तव्य के तहत न हो। यह हमें नहीं दिखाया गया है कि इन याचिकाओं में प्रतिवादी किसी भी वैधानिक कर्तव्य के तहत हैं और इसलिए, ये याचिकाएं अनुरक्षणीय नहीं हैं।

12. हमारे द्वारा तैयार किए गए दो प्रश्नों के उत्तर ये हैं:

प्रश्न सं. का उत्तर दें I: नकारात्मक में।

प्रश्न सं. का उत्तर दें। II:

केवल इस हद तक सकारात्मक है कि जहां आदेश से यह पाया जाता है कि कानून के मौलिक सिद्धांत का उल्लंघन आक्षेपित है और आगे ऐसा आदेश व्यथित पक्ष के लिए पर्याप्त अन्याय का कारण बनता है, तो यह सिद्धांत कि दीवानी मुकदमे में पारित सामान्य रूप से अंतर्वर्ती आदेश उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी नहीं है, उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत जारी की जाने वाली ऐसी रिट याचिका को नहीं रोकेग जो उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सुस्थापित और मान्यता प्राप्त सिद्धांतों के मुकदमो में आती है।''

24. इस न्यायालय की एक सुसंगत राय थी कि जहां वैधानिक अपील या संशोधन को प्राथमिकता दी गई है, वहां अदालतों को यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि एक बार कार्यवाही वैधानिक प्रकृति की हो और स्वीकार कर ली जाए, तो मुकदमेबाजी विचाराधीनता होने के कारण वाद को निष्फल होने से बचाने के लिए अंतरिम संरक्षण दिया जाना चाहिए, और **1983 ए. डब्ल्यू. सी. 121 "मूल चंद यादव और एक अन्य बनाम रजा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड रामपुर और अन्य" में** रिपोर्ट किए गए फैसले पर यही विचार किया गया है, प्रासंगिक अनुच्छेदसं0 4 को उद्धत किया गया है:–

''4. हमने श्रीएस0एन0 कैकर, अपीलार्थियों के विद्वान वकील, को सुना और प्रतिवादी श्री मनोज स्वरूप, अधिवक्ता द्वारा से केविएट द्वारा पेश हुए। हम मौजूदा में गुण–दोष पर किसी भी दलील की जांच करने के लिए इच्छुक नहीं हैं, लेकिन हम उभरती स्थिति पर ध्यान देना चाहेंगे यदि अपील विचाराधीनता रहने के दौरान अपील के तहत आदेश का संचालन निलंबित नहीं किया जाता है। यदि एफ. ए0एफ0ओ0 को स्वीकृति दी जाती है, तो जाहिर है कि मूल चंद यादव कब्जे में बने रहने के हकदार होंगे। अब, यदि अवमानना की किसी भी कार्रवाई से बचने के लिए आदेश को निलंबित नहीं किया जाता है, तो मूल चंद को कमरा खाली करना होगा और अदालत के आदेश का पालन करते हुए प्रतिवादी को कब्जा सौंपना होगा। हम उत्तरदाताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज स्वरूप से पूरी तरह सहमत हैं कि न्यायालय के आदेश का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है और यहां तक कि न्यायालय के आदेश का गुप्त अनादर भी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। लेकिन यदि आदेशों को चुनौती दी जाती है और अपीलें लंबित होती हैं, तो अपील विचाराधीनता रहने के दौरान एक झूलता पेंडुलम की अनुमति नहीं दी जा सकती है। श्री मनोज स्वरूप यह प्रस्तुत करने में पूरी तरह से सही हो सकते हैं कि ''अदालत के आदेश का जानबूझकर उल्लंघ ान किया गया है। हम उस निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं। लेकिन न्यायिक दृष्टिकोण के लिए आवश्यक है कि अपील विचाराधीनता रहने के दौरान गंभीर नागरिक परिणामों वाले आदेश के संचालन को निलंबित किया जाना चाहिए। विशेषकर तब जब अपील स्वीकार की जाती है। मुकदमेबाजी के पिछले इतिहास को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। और यह गंभीर रूप से विवादित नहीं है कि विवादग्रस्त एक कमरे को छोड़कर पूरी इमारत, हरि भवन, निगम के कब्जे में है। हम तदनुसार 6 अगस्त 1982 के आदेश के संचालन को निलंबित करते हैं जिसमें अपीलकर्ताओं को निर्देश दिया गया है कि वे इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लंबित उस आदेश के खिलाफ पहली अपील के निस्तारण तक प्रतिवादी को कमरे का कब्जा सौंप दें। श्री मनोज स्वरूप अनुरोध करते हैं कि पहले और बाद की दोनों अपीलों की जल्द से जल्द एक सुनवाई की जानी चाहिए, हम तदनुसार आदेश देते हैं और उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि यदि वह अपने विवेकाधिकार से दोनों अपीलों की जल्द से जल्द सुनवाई करना उचित समझता है ताकि विकराल स्थिति से बचा जा सके। याचिका का निस्तारण कर दिया गया है। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।''

25. **ए. आई. आर. 1993 सुप्रीम कोर्ट, 412 "श्री किहोटा होलोहोन बनाम श्री जचिलहू और अन्य", (5 न्यायाधीश)** में रिपोर्ट किए गए फैसले ठीक होना यह भी बताया गया है, जिसमें प्रावधान किया गया है कि पक्षों के बीच मुकदमेबाजी को और जटिल या गुणा करने के लिए कार्यवाही की स्थिति या विषय वस्तु को बनाए रखा जाना है। प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नवत हैं:–

''51. मामले से अलग होने से पहले, हमें एक और परिस्थिति पर विचार करना चाहिए। अंतर्वर्ती चरण के दौरान, संविधान पीठ को कुछ अंतर्वर्ती आदेश देने के लिए राजी किया गया, जिन्हें सदन के अध्यक्ष को संबोधित किया गया, (हालांकि, दसवीं अनुसूची के तहत एक न्यायिक मंच के रूप में एक अलग क्षमता में) अवज्ञा की शिकायतें उत्पन्न हुईं, जो अध्यक्ष के खिलाफ अवमानना की कार्यवाही शुरू करने के लिए याचिकाओं को दायर करने में समाप्त हुईं। यह अभ्यावेदन किया गया था कि जब मामले से निपटने के लिए न्यायालय की अधिकार क्षेत्र का सवाल उठाया गया था और पैराग्राफ 7 की संवैधानिकता घोषित होने से पहले ही, आत्म–संयम की आवश्यकता थी कि विधायिका और न्यायालयों के बीच संबंधों के संवेदनशील क्षेत्र में कोई अंतर्वर्ती आदेश नहीं दिया जाना चाहिए।

अंतर्वर्ती आदेशों का उद्देश्य पक्षों के अधिकारों की स्थिति को बनाए रखना है, ताकि, कार्यवाही अपने विचाराधीनता रहने के दौरान एक या दूसरे पक्ष द्वारा किसी भी एकतरफा स्पष्ट कार्य से निष्फल न हो जाए। प्रस्तुत किए गए तर्कों में से एक संविधान के अनुच्छेद 368 (2) के प्रावधान का पालन न करने के लिए संशोधन की अयोग्यता के बारे में था। अब यह सर्वसम्मति से माना गया है कि अनुच्छेद 7 अनुच्छेद 368 (2) के प्रावधान को आकर्षित करता है। इस मामले में अंतर्वर्ती आदेश अनिवार्य रूप से उचित थे ताकि किसी भी भूस्खलन परिवर्तन की अनुमति न दी जाए जिससे कार्यवाही अप्रभावी और निष्फल हो जाए।''

26. याचिकाकर्ता विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी दलीलों के समर्थन में आगे **2011 (4) महाराष्ट्र लॉ जर्नल, पृष्ठ 50, "रामचंद्र गणपतराव हांडे /हांडेगे बनाम विट्ठलराव हांडे और अन्य"** और दूसरे फैसले **2006 (6) महाराष्ट्र लॉ जर्नल, 786 "रूपाली मेहता बनाम श्रीमती टीना नरिंदर सैन मेहता "** में रिपोर्ट किये गये निर्णयों का संदर्भ दिया गया था।

27. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए संदर्भों का जवाब देने से पहले, याचिकाकर्ता के लिए उपरोक्त दो निर्णयों के लिए, यह न्यायालय भी एक अंतर निकालने के लिए स्वतंत्रता लेगा। उदाहरण के लिए रूपाली मेहता (सुप्रा) के फैसले के लिए, यह भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 217, 268 और 192 के तहत कार्यवाही से निकल रहा था, और संदर्भ को पैराग्राफ संख्या में दिया जा सकता है।उक्त निर्णय के 8,11 और 13, जो यहाँ निकाले गए हैं:–

''8. ऊपर उद्धृत धारा 192 और 193 अधिनियम के भाग टप् में पाई जाती हैं। भाग–VII के प्रावधानों के अवलोकन से पता चलता है कि भाग–VII के तहत संपत्ति की सुरक्षा का आदेश अदालत द्वारा संक्षिप्त कार्यवाही में दिया जाता है और अदालत ऐसा आदेश तब दे सकती है जब अदालत को लगता है कि तत्काल आदेश आवश्यक हैं और अदालत दीवानी मुकदमा के एक सामान्य उपाय को अपनाकर उस आदेश को सुरक्षित करने के लिए पक्षकार की प्रतीक्षा नहीं कर सकती है। धारा 192 और 193 के तहत आदेश केवल संपत्ति पर जबरन कब्जा करने के संबंध में कोई अधिकार नहीं रखने वाले व्यक्ति को रोकने के लिए किया जा सकता है। मेरी राय में धारा 208 और 209 भी प्रासंगिक हैं जो निम्नानुसार हैं:

208. मुकदमा लाने के अधिकार की रक्षा– इस भाग में निहित कुछ भी उस पक्ष द्वारा मुकदमा लाने में कोई बाधा नहीं होगी जिसका आवेदन कब्जे में पक्ष को बुलाने से पहले या बाद में अस्वीकार कर दिया गया हो, या उस पक्ष द्वारा जिसे इस भाग के तहत कब्जे से बेदखल कर दिया गया हो।

209. संक्षिप्त कार्यवाही के निर्णय का प्रभाव– इस भाग के अंतर्गत संक्षिप्त कार्यवाही में जिला न्यायाधीश के निर्णय का वास्तविक कब्जे के निपटारे के अलावा कोई अन्य प्रभाव नहीं होगा; लेकिन इस उद्देश्य के लिए यह अंतिम होगा, और किसी भी अपील या समीक्षा के अधीन नहीं होगा।''

11. इसमें कोई संदेह नहीं है कि न केवल धारा 141, बल्कि संपूर्ण सिविल प्रक्रिया संहिता एक वसीयती मुकदमा पर लागू होती है। इसलिए, आदेश 39 के तहत अदालत की शक्ति भी अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश देने के लिए अदालत को उपलब्ध होगी। लेकिन आदेश 39 के तहत अस्थायी निषेधाज्ञा का आदेश देने के लिए, जिस संपत्ति के संबंध में आदेश मांगा गया है, वह मुकदमा का विषय होना चाहिए। रिसीवर की नियुक्ति के संबंध में आदेश 40 के प्रावधानों के साथ भी ऐसा ही है। अस्थायी निषेधाज्ञा का आदेश या प्राप्तकर्ता की नियुक्ति का आदेश अदालत द्वारा केवल उस संपत्ति के संबंध में किया जा सकता है जो मुकदमा का विषय है। एक दीवानी अदालत संपत्ति के संबंध में अंतरिम आदेश भी दे सकती है जो मुकदमा का विषय नहीं है, लेकिन ऐसी संपत्ति के संबंध में अंतरिम आदेश उस डिक्री के निष्पादन को सुरक्षित करने के लिए किया जाना आवश्यक है जिसे अदालत मुकदमा में पारित कर सकती है। हालांकि, एक वसीयतनामा मुकदमा में, मृतक द्वारा छोड़ी गई संपत्ति वसीयतनामा मुकदमा का विषय नहीं है। वसीयतनामा अदालत द्वारा पारित डिक्री की प्रकृति ऐसी है कि इसके निष्पादन को सुरक्षित करने के लिए अदालत के लिए किसी भी संपत्ति के संबंध में कोई अंतरिम आदेश देना आवश्यक नहीं है। पटना उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने **काशी नाथ सिंह बनाम दुल्हिन गुलजारी कुर ए. आई. आर. 1941 पटना 475** मामले में अपने फैसले में इस प्रकार टिप्पणी की है:

वसीयत की जांच के लिए या वसीयत की एक प्रति के साथ प्रशासन के पत्रों के अनुदान के लिए एक आवेदन में जो एकमात्र सवाल उठता है वह यह है कि वसीयत सही है या नहीं। यह तय करने के लिए प्रोबेट कोर्ट के लिए अनुमन्य नहीं है कि क्या वह संपत्ति जिसके साथ एक वसीयतकर्ता ने सौदा करने का इरादा किया है, वास्तव में उसकी थी या नहीं। **19 इला0 458** में सर जॉन एज ने यह कहा:

यह तर्क दिया गया है कि जहां वसीयत की जांच के लिए एक आवेदन का विरोध ा अभिकथित है और यह आरोप लगाया जाता है कि वसीयत द्वारा निपटाई गई संपत्ति वसीयतकर्ता की नहीं थी या वह संपत्ति नहीं थी जिस पर वसीयतकर्ता को वसीयत करने की शक्ति थी, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह इस प्रश्न को उठाने वाले मुद्दे का परीक्षण करे। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि अगर इस देश के न्यायालयों को इस तरह के मुद्दे का परीक्षण करना पड़े तो यह बहुत ही असुविधाजनक होगा। एक अदालत कभी भी पूरी तरह से सुनिश्चित नहीं हो सकती थी कि उसे अपने सामने उचित पक्ष मिले थे। यह सुनिश्चित करना हमेशा मुश्किल होगा कि मामले में कोई मिलीभगत नहीं थी। यह जनता के हित में अधिक सुरक्षित है कि संपत्ति के स्वामित्व के मुद्दा का निर्णय तब किया जाना चाहिए जब मुद्दे नियमित मुकदमा में उठाए जाते हैं, न कि प्रोबेट के अनुदान के लिए आवेदन पर।

यह सच है कि विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने पूरी तरह से महसूस किया कि वसीयत में वर्णित घर और बगीचे और कश्ट की भूमि वास्तव में श्री बार्ता कुर की है न कि उनके बेटे राम चरित सिंह की, या नहीं, यह तय करना उनके लिए अनुचित होगा। हालाँकि, यह अफसोस की बात है कि उन्होंने यह भी नहीं माना कि कमोबेश उन्हीं कारणों से काशी नाथ सिंह को वसीयतनामा की संपत्ति में रुचि नहीं थी और इस तरह अनुदान का विरोध करने के हकदार थे। काशी नाथ सिंह जैसी स्थिति में व्यक्तियों को पेश होने और प्रोबेट या प्रशासन के पत्रों के अनुदान का विरोध करने की अनुमति देने का परिणाम वसीयत के समर्थकों के

लिए बहुत असुविधाजनक और परेशान करने वाला हो सकता है, जिन्हें इस तरह इसे गंभीर रूप में साबित करने की कीमत चुकानी पड़ती है, जब इसे अन्यथा सामान्य रूप में साबित किया जा सकता है। मैं इस अपील को लागत के साथ खारिज कर दूंगा।

13. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि काशी नाथ सिंह मामले में पटना उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा अपने फैसले में निर्धारित कानून का प्रस्ताव निर्विवाद है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा है कि वसीयत में उल्लिखित संपत्ति पर मृतक के अधिकार के सवाल पर जाने के लिए वसीयतनामा अदालत के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक वसीयतनामा मुकदमा में, वसीयत या संपत्ति में उल्लिखित संपत्ति जो मृतक द्वारा छोड़ी जा सकती है या नहीं छोड़ी जा सकती है, वह वसीयतनामा मुकदमा का विषय नहीं है, और इसलिए, मेरी राय में, सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, अदालत संपत्ति के संरक्षण के संबंध में कोई अंतरिम आदेश देने का हकदार नहीं होगा, जब तक कि अधिनियम के भाग–VII के तहत विशिष्ट परिस्थितियों में अदालत द्वारा कोई आदेश देने की आवश्यकता न हो।

28. उक्त न्यायनिर्णय एक अलग विषय पर और एक अलग संदर्भ में था, और तत्काल मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि यह एक ऐसा मामला था जहां सी. पी. सी. को वसीयती मुकदमे की कार्यवाही पर लागू किया गया था, और वहां उन तथ्यों और परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वसीयती मुकदमे से निपटने के दौरान अदालत की शक्तियों के पास वह शक्ति होगी जो सी. पी. सी. के आदेश 39 के तहत दीवानी न्यायालयों को अस्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए भी प्रदान की गई थी।

29. दूसरे मामले में, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा **रामचंद्र गणपतराव हांडे /हांडेगे (ऊपर)** के फैसले का संदर्भ दिया गया है, उक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 14 का संदर्भ दिया जा सकता है। जो एक बार फिर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 217,266,268 और 269 के निहितार्थों के संबंध में कार्यवाहियों से संबंधित था, जो उन कार्यवाहियों की प्रकृति में थी जो घोषणात्मक प्रकृति की थीं, जिसमें प्रोबेट के अनुदान के उद्देश्यों के लिए, पक्षकारों के कार्मिक अधिकारों का निर्धारण शामिल था, जो विचाराधीन था, और उन परिस्थितियों में उक्त निर्णय के पैरा से. 14 में, न्यायालय ने प्रशासन पत्र जारी करने के प्रयोजनों के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 269 के विधायी इरादे और अधिदेश पर विचार किया है, जिसमें यह राय दी गई है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 269 (2) के तहत प्रदान किए गए प्रत्यक्ष प्रावधानों को देखते हुए, सिविल अदालतो में निहित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अदालतों को विधायी रूप से कोई उपाय उपलब्ध नहीं कराया गया है क्योंकि यह मुद्दा केवल प्रोबेट और प्रशासन के पत्र के अनुदान से संबंधित है, और यह एक अचल संपत्ति नहीं है, जो कार्यवाही का विषय है, जो हाथ में मामला नहीं है। इसलिए, यह मौजूदा मामले में लागू नहीं होगा, जो उ0प्र0 भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत कार्यवाही से उत्पन्न हो रहा है।

30. इस न्यायालय का विचार है कि उपरोक्त पृष्ठभूमि को देखते हुए, जिसके तहत कार्यवाही को उ0प्र0 भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत पुनरीक्षण चरण तक ले जाया गया है।, यह न्यायालय दो तथ्यों से अनजान नहीं हो सकता हैः–

(1) यह कि एक आक्षेपित आदेश द्वारा राजस्व अभिलेखों में किया गया दाखिल खारिज, जिसे वास्तव में चुनौती दी गई है, 17.06.1988 के एक आदेश के अनुपालन में था, जिसे आदेश पारित होने के 32 वर्षों के बाद राजस्व

अभिलेखों में शामिल किया गया था, और वह भी श्रीमती इंद्रावती की मृत्यु के बाद। जिनके पक्ष में दाखिल खाारिज आदेश पारित किया गया था।

(2) यह न्यायालय इस तथ्य से भी अनजान नहीं हो सकता है कि संशोधन की संस्थापन से पहले, यदि निगरानी ज्ञापन के अनुच्छेद सं 5 व 15 जो पहले ही वर्णित किये जा चुके हैं, को ध्यान में रखा गया है, यह कहा गया है कि यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229बी के तहत अधिकारों की घ ोषणा के लिए एक नियमित कार्यवाही में, जहां यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229डी के तहत अंतरिम सुरक्षा प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग किया गया है, तब भी जब संपत्ति का हस्तांतरण प्रतिबंधित था और उक्त प्रतिबंध आदेश के बावजूद, याचिकाकर्ता द्वारा अपने वकील श्री धनजीत कलीता द्वारा दि0 14.12. 2020 को बिक्री विलेखों को निष्पादित किया गया था। यह स्वयं याचिकाकर्ता के निहितार्थ और संपत्ति की बिक्री द्वारा नए अधिकार पैदा करके न्यायिक कार्यवाही को और जटिल बनाने के लिए इरादे को दर्शाता है, जिसे आक्षेपित आदेश द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए था।

31. उस घटना और परिस्थितियों में, जो बिक्री स्वयं की गई थी, वह मुख्य निषेधाज्ञा आदेश का उल्लंघन था जो यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229बी के तहत नियमित कार्यवाही में दिया गया था। इसलिए, इन परिस्थितियों में, इस मामले को एक सामान्य आधार पर नहीं रखा जा सकता है, और एक सामान्य मानदंड के साथ निपटा नहीं जा सकता है और इसलिए यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का संबंध है, तो विशेष रूप से **1987 (2) एआरसी, पृष्ठ 513 स्वालेह और अन्य बनाम तृतीय अतिरिक्त।जिला न्यायाधीश, मेरठ और अन्य** में रिपोर्ट किए गए निर्णय में निर्धारित आदेश के आलोक में विचार किया जाता है। ''भले ही कोई आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना हो, फिर भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट अदालतों के समक्ष कार्यवाही, कार्यवाही के लिए एक पक्ष के अधिकार के रूप में उपलब्ध नहीं है, क्योंकि इस अनुच्छेद के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां आत्यन्तिक रूप से विवेकाधीन प्रकृति की हैं, और निचली अदालतों या अधिकरण की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की शक्तियों का प्रयोग अधिकार के मामले के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह विचार आक्षेपित है कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अदालतें अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका पर विचार कर सकती हैं या नहीं कर सकती हैं, जो प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर आत्यन्तिक रूप से निर्भर होगी। प्रासंगिक अनुच्छेद निम्नानुसार हैः–

''7. उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क देना गया कि निर्धारित प्राधिकरण के निर्णय के खिलाफ जिला न्यायाधीश के समक्ष कोई अपील नहीं की गई है। उच्च न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय ने अंततः यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि जिला न्यायाधीश के समक्ष रखी गई अपील, निर्धारित प्राधिकरण का आदेश अमान्य था और जिला न्यायाधीश द्वारा उचित रूप से रद्द दिया गया था। उस आधार पर उच्च न्यायालय ने विद्वान जिला न्यायाधीश के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। यह सच है कि कुछ तकनीकी भंग हुआ है क्योंकि यदि विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष कोई अपील नहीं है, तो विद्वान जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील में, रद्द नहीं किया जा अनुरक्षणीय है। लेकिन उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा था। उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि निर्धारित प्राधिकरण का आदेश अमान्य और अनुचित था। उच्च न्यायालय स्वयं इसे दरकिनार कर सकता था। इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय किया गया है, हालांकि, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, तकनीकी रूप से अपीलकर्ता का कहना था कि जिला न्यायाधीश का आदेश अवैध ा और अनुचित था। यदि हम उच्च न्यायालय के आदेश को दोहराते हैं क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए निर्धारित प्राधिकरण के आदेश को रद्द कर रहा है तो कोई अपवाद नहीं

लिया जा सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, न्याय किया गया है और चूंकि निर्धारित प्राधिकरण के अनुचित आदेश को रद्द दिया गया है, इसलिए कोई आपत्ति नहीं ली जा सकती है।''

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ए. आर. सी. 1987 (सुप्रा) में दिए गए निर्णय में कहा है कि भले ही वह आदेश जो भारत का संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत न्यायिक जांच का विषय हो। भले ही यह अधिकार क्षेत्र के बिना हो, यदि इसे रद्द दिया जाता है, और इसके परिणामस्वरूप गलत आदेश को पुनर्जीवित किया जाता है, तो रिट अदालत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगी और इसलिए यह प्रावधान किया गया है कि विद्वत अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही के अस्तित्व के दौरान पारित अंतर्वर्ती आदेश के खिलाफ एक रिट याचिका में, अदालत को यह सुनिश्चित करना होगा कि एक गंभीर अन्याय के परिणामस्वरूप एक स्पष्ट त्रुटि होनी चाहिए, जो अदालत या अधिकरण द्वारा की गई है, जो मौजूदा मामले में समान नहीं है, जो याचिकाकर्ता के यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229डी के तहत निषेधाज्ञा के बावजूद संपत्ति को संप्रेषित करने के लिए कार्यवाही करने के तथ्यात्मक आचरण से काफी स्पष्ट है।

33. कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा **ए. आई. आर. 1952 कलकत्ता, पृष्ठ 192 ''इंद्र नारायण कुंडू बनाम गिरिंद्र नाथ मित्रा** में एक निर्णय में बताया जो उक्त निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैः–

''2. मकान मालिक ने परिसर संख्या 53 हैरिसन रोड के मानक किराए के निर्धारण के लिए आवेदन किया। जो एक किरायेदार के रूप में विरोधी पक्ष के कब्जे में था। इस परिसर को 1934 में 185/– रुपये के किराए पर दिया गया था। और उस किराए का भुगतान तब से किया जा रहा है। 1950 के किराया नियंत्रण अधिनियम के लागू होने से पहले कार्यवाही शुरू की गई थी और 1950 के अधिनियम के लागू होने से पहले किराया नियंत्रक का निर्णय भी दिया गया था। 1950 के अधिनियम के लागू होने पर एक अपील लंबित थी और 1950 के अधिनियम की धारा 17 (3) के कारण अपीलीय न्यायालय मानक किराए के निर्धारण से संबंधित 1950 के अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए बाध्य था, और ऐसा किया गया है।

3. जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि आवेदन 1950 के अधिनियम की धारा 32 (4) के प्रावधानों के तहत अपीलीय न्यायाधीश के आदेश के पुनरीक्षण के लिए है। लेकिन इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि वह उप–धारा किसी अपीलीय आदेश को संशोधित करने का कोई अधिकार नहीं देती है जो 1950 के अधिनियम के लागू होने से पहले शुरू की गई कार्यवाहियों में किया गया था। ये कार्यवाहियाँ 1948 के अधिनियम द्वारा शासित होती हैं, सिवाय उस प्रावधान के जिसका मैंने पहले ही 1950 के अधिनियम की धारा 17 (3) में उल्लेख किया है। 1948 के अधिनियम के तहत पुनरीक्षण का कोई अधिकार नहीं था और यह न्यायालय पहले ही मौजूदा के समान एक मामले में निर्णय दे चुका है कि इस न्यायालय के पास कोई पुनरीक्षण नहीं है।

4. श्री पंचानन चौधरी ने हालांकि हमसे इस आवेदन को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक आवेदन के रूप में मानने का आग्रह किया है। उस अनुच्छेद के तहत हमारे सामने कोई आवेदन नहीं है और इस मामले की परिस्थितियों में हम हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं हैं, हालांकि हम उस अनुच्छेद द्वारा दी गई शक्तियों के तहत कर सकते हैं।

5. श्री चौधरी का तर्क है कि इस मामले में अपीलीय न्यायाधीश को इस अपील की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि यह

1948 के अधिनियम द्वारा शासित एक अपील थी और अपीलीय न्यायाधीश ऐसा व्यक्ति नहीं था जो अपील की सुनवाई कर सके। 1948 के अधिनियम के तहत अपील प्रेसीडेंसी क्षेत्र में लघु कारणों के न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पास थी जो अपीलों को उन व्यक्तियों को स्थानांतरित कर सकते थे जिन्हें धारा 32 की उप–धारा (2) के तहत सरकार द्वारा अधिसूचित किया गया था। 1950 के अधिनियम के तहत मुख्य न्यायाधीश मामले को लघु कारण न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को स्थानांतरित कर सकते थे और उन्होंने इस मामले में यही किया। उन्होंने मामले को न्यायालय के सामान्य न्यायाधीशों में से एक को स्थानांतरित कर दिया। ऐसा हो सकता है कि इस मामले में अपीलीय न्यायाधीश को इस मामले की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। लेकिन क्या हमें संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप करना चाहिए? यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उस धारा के तहत हस्तक्षेप दुर्लभ होना चाहिए और न्यायालय को केवल उन मामलों में कार्य करना चाहिए जहां न्यायालय के हस्तक्षेप नहीं करने पर न्याय की गंभीर विफलता होगी।''

34. इस प्रकार निर्धारित कानून यह है कि उन मामलों में भी, जहां निचली अदालतों की चुनौती के तहत आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना हैं, उच्च न्यायालय अभी भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपनी अधीक्षण की शक्तियों के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जहां न्यायहित में इस तरह के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यह पूर्वधारणा निर्धारित की गई है कि एक उच्च न्यायालय अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, केवल यह तथ्य कि किसी विशेष विवादास्पद मुद्दे पर एक अलग दृष्टिकोण लिया जा सकता था, किसी भी अंतर्वर्ती आदेश में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं हो सकता है, जिसे उसके समक्ष चुनौती दी गई है, जैसा कि स्पष्ट होगा कि उपरोक्त सिद्धांत मौजूदा मामले में समान रूप से लागू होंगे। यद्यपि याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क को स्वीकार किए बिना कि अतिरिक्त आयुक्त की अदालत द्वारा दिया गया यथास्थिति का आदेश इसकी क्षमता से परे था, लेकिन फिर भी 32 वर्षों के बाद किए गए दाखिल खारिज का लाभ उठाते हुए याचिकाकर्ता के आचरण को देखते हुए और बाद में अपना नाम दर्ज करने के कुछ महीनों के भीतर संपत्ति को बेचने के लिए भी आगे बढ़े, लंबित वाद में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए यथास्थिति का आदेश वाद की बहुलता की रक्षा करने के लिए एक प्रभावी अधिनिर्णयन की भावना में जाता है, और अदालत की प्रकिया के दुरुपयोग की रक्षा करने के लिए भी जाता है, जो इसमें सामने आया है और इसके बजाय यथास्थिति का आदेश नियमित रूप से पारित किया जाता है। हम इस विषय पर निम्नलिखित निर्णयों का संदर्भ दे सकते हैं। **हाकम देवी और अन्य बनाम फुमन सिंह, बुटा सिंह, ए. आई. आर. 1963 पंजाब, 156** में निम्नानुसार अभिनिर्धारित हैः–

''2. फाल्गु दत्त के मामले में MANU/PH/0230/1960 में विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि अनुच्छेद 227 के तहत प्रदान किया गया उपाय एक असाधारण प्रकृति का है और अनुच्छेद 227 के तहत एक रिट के मामले में सिद्धांत या सादृश्य में कोई अंतर नहीं है जो सरशियोरेराई के रिट की आवश्यक विशेषताओं में आता है जो अनुच्छेद 226 की विषय वस्तु है। इस स्तर पर संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 को पुनः प्रस्तुत करना वांछनीय है। अनुच्छेद 226, जैसा कि इसके सीमांत शीर्षक से स्पष्ट रूप से पता चलता है, कुछ रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालयों की शक्ति से संबंधित हैं, निम्नलिखित शब्दों में हैः–––

कुछ रिट जारी करने की उच्च न्यायालयों की शक्ति – 226(1)– अनुच्छेद 32 के प्रावधान करने के बावजूद, प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन सभी क्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को उचित मामलों में भाग 3 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए रिट जारी करने की शक्ति होगी। उन क्षेत्रों के भीतर कोई भी सरकार, निर्देश, परमादेश या विवेक, जिसमें बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अनिवार्यता, निषेध, यथास्थिति अधिकार पृच्छा और सरशियोरेराई की प्रकृति के रिट शामिल हैं, या उनमें से कोई भी शामिल है।

(2) धारा (1) द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति अनुच्छेद 32 के धारा (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति का अवमूल्यन नहीं होगी।

इसके विपरीत अनुच्छेद 227 एक प्रावधान है जो उच्च न्यायालय द्वारा सभी विपक्षों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति प्रदान करता है, और निम्नानुसारे हैः–

''227 की शक्ति, (1) प्रत्येक उच्च न्यायालय को न्यायालय संबंध 19 में सभी न्यायालय और सभी न्यायालय पर उच्च न्यायाधिकरणों द्वारा पर्यवेक्षण का अधिकार होगा, जो वह अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है।

(2) पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर पक्षपातपूर्ण प्रभाव डाले बिना, उच्च न्यायालय –

(1) ऐसी अदालतों से रिटर्न के लिए कॉल करेंय

(2) सामान्य नियम बनाना और जारी करना और ऐसे न्यायालयों की प्रथाओं और कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए प्रपत्र निर्धारित करना; और (3) प्रपत्र निर्धारित करना जिसमें ऐसे किसी भी न्यायालय के अधिकारियों द्वारा पुस्तकें, प्रविष्टियां और खाते रखे जाएँगे।

(3) उच्च न्यायालय शेरिफ और ऐसे न्यायालयों के सभी क्लर्कों और अधिकारियों और उसमें वकालत करने वाले वकीलों, अधिवक्ताओं और वकीलों को दी जाने वाली फीस की तालिकाओं का भी निर्धारण कर सकता हैः

बशर्ते कि धारा (2) या धारा (3) के तहत बनाए गए कोई भी नियम, निर्धारित प्रारूप या तय की गई सारणियां तत्काल प्रभाव से किसी भी प्रावधान के साथ असंगत नहीं होंगी और राज्यपाल से पूर्व अनुमोदन की फिर से आवश्यकता होगी।

इस अनुच्छेद से संबंधित किसी कानून द्वारा सशस्त्र बल या उसके तहत गठित अधिकरण के किसी भी न्यायालय पर उच्च न्यायालय को अधीक्षण की शक्तियां प्रदान करने के लिए नहीं माना जाएगा।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त कुछ रिट, निर्देश और परमादेश जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति का उपयोग अनुच्छेद 32 धारा 2 में निहित किसी भी चीज के बावजूद किया जा सकता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय को भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए ''बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अनिवार्य, निषेध, यथास्थिति अधिकार पृच्छा और सरशियोरेराई की प्रकृति में रिट सहित निर्देश या परमादेश या रिट, जो भी उचित हो'' जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है।

इस धारा की अनुच्छेद 226 के साथ तुलना से पता चलता है कि उच्च न्यायालय को संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार के प्रवर्तन के अलावा किसी भी उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का अधिकार है। अनुच्छेद 223 और 227, जिन्हें ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है, को केवल पढ़ने से स्पष्ट और अचूक शब्दों में पता चलता है कि अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त शक्ति सभी न्यायालय और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की है, जबकि अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त शक्ति स्पष्ट रूप से निर्देश, आदेश या रिट को संदर्भित करती है, जिसमें उसमें उल्लिखित पांच श्रेणियों की प्रकृति के रिट शामिल हैं और उन्हें किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को जारी किया जा सकता है, जिसमें उपयुक्त मामलों में संबंधित उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर कोई भी सरकार शामिल है। अनुच्छेद 226 हमारे संविधान में संविधान निर्माताओं द्वारा पेश

किया गया एक नया प्रावधान है जबकि अनुच्छेद 227 वास्तव में इस अतिरिक्त प्रावधान के साथ कि अनुच्छेद 227 के तहत यह न्यायालय उन न्यायाधिकरणों पर भी अपनी अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग कर सकता है जो न्यायालय नहीं ह, ैभारत सरकार अधिनियम 1915 की धारा 107 का पुनरुत्पादन है। इससे पहले, तीन प्रेसीडेंसी उच्च न्यायालय निस्संदेह विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्ति का प्रयोग करते थे, लेकिन इस अधिकार क्षेत्र का दावा उन उच्च न्यायालयों द्वारा पुराने सर्वोच्च न्यायालय के उत्तराधिकारी के रूप में किया जाता था और इसलिए, यह केवल प्रेसीडेंसी शहरों की सीमाओं तक ही सीमित था। संविधान लागू होने से पहले अन्य उच्च न्यायालयों के पास कभी भी ऐसा कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

हालांकि, अनुच्छेद 227 द्वारा थोड़े बढ़े हुए रूप में बहाल की गई अधीक्षण की शक्ति भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 107 के तहत सभी उच्च न्यायालयों के पास थी, और जैसा कि मैं वर्तमान में दिखाऊंगा, भारतीय उच्च न्यायालय के पास 1861 के न्यायालय अधिनियम के तहत भी थी।

मैं यहाँ धारा 107 को पुनः प्रस्तुत कर सकता हूँः–

''107.प्रत्येक उच्च न्यायालय को कुछ समय के लिए अपनी अपीलीय अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत सभी न्यायालयों पर अधीक्षण प्राप्त है और वह निम्नलिखित में से कोई भी कार्य कर सकता है, अर्थात–– (क) विवरणी के लिए निवेदन;

(ख) ऐसे किसी भी न्यायालय से किसी भी मुकदमा या अपील को समान या उच्चतर अधिकारिता वाले किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने का निर्देश देना; (ग) सामान्य नियम बनाना और जारी करना और ऐसे न्यायालयों की प्रथा और कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए प्रपत्र निर्धारित करना; (घ) ऐसे प्रपत्र निर्धारित करना जिसमें ऐसे किसी भी न्यायालय के अधिकारियों द्वारा पुस्तकें, प्रविष्टियां और खाते रखे जाने चाहिए, और (ङ) शेरिफ, वकीलों और सभी क्लर्कों और न्यायालयों के अधिकारियों को दी जाने वाली फीस की तालिकाओं का निर्धारण करनाः

बशर्ते कि ऐसे नियम, फॉर्म एंड टेबल उस समय लागू किसी भी अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं होंगे, और कलकत्ता उच्च न्यायालय के मामले में, गवर्नर–जनरल इन काउंसिल और स्थानीय सरकार के अन्य मामलों में पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता होगी।

इस धारा का उपयोग याचिकाकर्ताओं द्वारा उन मामलों में अधीनस्थ न्यायालयों को अपनी सीमा के भीतर रखने के लिए उच्च न्यायालयों के अधीक्षण की शक्ति का उपयोग करने के लिए किया जाता था, जहां कुछ कारणों से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 लागू नहीं होती थी, लेकिन शायद ही ऐसा कोई मामला था जिसमें इस धारा के प्रावधानों को उच्च न्यायालय को लोकप्रिय अर्थों में रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करने के लिए माना जाता था, जैसा कि कानून में समझा जाता है।

वास्तव में यही सवाल मेरे सामने हुडी बनाम सुदी, :(ए. आई. आर. 1962 पंजाब 467) सिविल प्रकीर्ण सं0 1960 का 630 में आया था। जब उस अधिकरण को पक्षकार न बनाये जाने के आधार पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी, जिसके आदेश को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत चुनौती दी गई थी। फाल्गु दत्त MANU/PH/0194/1962 के मामले का बार में उल्लेख नहीं किया गया था। लेकिन

मैंने इस आपत्ति को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि अनुच्छेद 227 इस न्यायालय रिट अधिकार क्षेत्र को प्रदान नहीं करता है जो अनुच्छेद 226 द्वारा बनाया गया है जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी की श्रृंखला में अधिकरण की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है। वहाँ मैंने अनुच्छेद 226 और 227 के बीच के अंतर की ओर भी इशारा किया जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाओं के लिए बनाए गए नियमों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है।

कुछ महीने बाद फिर से यही सवाल मेरे सामने फकीर चंद अनंत राम बनाम गोपी चंद MANU/PH/0194/1962 में उठाया गया था। इस अवसर पर, आपत्ति के समर्थन में फाल्गु दत्त MANU/PH/0230/1960 के मामले में आधार बनाया गया था, लेकिन मुझे उस मामले में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता के बारे में काफी संदेह महसूस हुआ। हालाँकि, अपने संदेह के बावजूद, मैंने मामले को एक बड़ी पीठ को नहीं भेजा क्योंकि गुण–दोष के आधार पर, मुझे लगा कि याचिका किसी भी मामले में खारिज होने के योग्य है।

3. यह कि अनुच्छेद 227 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र उस अधिकार क्षेत्र के साथ पूरी तरह से समान नहीं है जिसका प्रयोग यह न्यायालय अनुच्छेद 226 के अंतर्गत करता है, ऊना को इस न्यायालय द्वारा लगातार लिए गए दृष्टिकोण से भी समर्थन प्रतीत होगा कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आदेशों के विपरीत, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत आदेश पत्र पेटेंट के धारा 10 के अंतर्गत अपील के अधीन नहीं हैं। यह विचार अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित निर्णयों में लिया गया है,:––राज किशन जैन बनाम तुलसी दास MANU/PH/0088/1959 और ब्रह्म दत्त बनाम पीपुल्स कोऑपरेटिव ट्रांसपोर्ट सोसाइटी लिमिटेड नई दिल्ली 1960 पीएलआर 916:(।ए0आई0आर0 1951 पीएंडएच 24)।

5. इसमें कोई संदेह नहीं है कि certiorari की आवश्यक रिट जारी करने की शक्ति की उत्पत्ति न्यायिक कार्य करने वाले निम्न निकायों पर उच्च न्यायालय के अधीक्षण की शक्ति में निहित है, तथा वह विशिष्ट और सटीक शक्ति स्पष्ट शब्दों में उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदान की गई है, न कि अनुच्छेद 227 द्वारा। इस प्रकार अनुच्छेद 227 के तहत एक आवेदन को केवल इस आधार पर कानून के मामले के रूप में खारिज नहीं किया जाएगा कि जिस अधिकरण के आदेश को चुनौती दी गई है, उसे याचिका में पक्षकार प्रतिवादी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। मुझे इस प्रश्न विचार करने के लिए नहीं कहा गया है कि क्या यह निर्देश, आदेश या रिट आदि के लिए प्रार्थना है। अनुच्छेद 227 के तहत विशेष रूप से दायर याचिका में तकनीकी रूप से विचार किया जा सकता है क्योंकि यह निर्दिष्ट बिंदु नहीं है।''

35. चिंतामणि शरण नाथ सहदेव बनाम बिहार राज्य और अन्य के मामले में, जो ए. आई. आर. 1990 पटना पेज 165 में रिपोर्ट किया गया है, प्रासंगिक अनुच्छेद यहाँ नीचे निकाला गया है:–

''27. भले ही प्रतिवादी सं0 2 का आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना था, क्योंकि इसने उस आदेश को सही किया है जो अनुचित और अमान्य भी था और क्योंकि न्याय किया गया है और प्रतिवादी नं0 3 को दरकिनार कर दिया गया है, मैं याचिकाकर्ता के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार करता हूं, क्योंकि अगर मैं संलग्नक 9 में निहित आदेश को दरकिनार करता हूं जो प्रतिवादी नं. 3 द्वारा पारित अविधिक आदेश को पुनर्जिवित करेगा।''

36. अतः उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय का विचार है कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपनी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, न्याय के व्यापक हित को पूरा करने के लिए अंतर्वर्ती आदेशों में हस्तक्षेप करने से खुद को दूर रखे। तथ्यों और परिस्थितियों के लिए, जिन पर पहले ही विचार किया जा चुका है, इस रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और तदनुसार इसे खारिज कर दिया जाता है।

(शरद कुमार शर्मा, जे.)

02.07.2021